आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 4/अंक 4/दिसंबर 2024

Received: 05/11/2024; Accepted: 12/12/2024; Published: 30/12/2024

" रघुवीर सहाय के काव्य में लोकतंत्र की विसंगतियाँ "

गुलाब सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग

हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय

ई मेल आइडी : singhgulab267@gmail.com

मोबाईल नंबर: 8745981020

गुलाब सिंह, **रघुवीर सहाय के काव्य में लोकतंत्र की विसंगतियाँ**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 4/अंक 4/दिसंबर 2024,(276- 283)

रघुवीर सहाय का काव्य लोकतंत्र की विसंगतियों से सना हुआ काव्य है। अलग से विसंगति ढूँढने के लिए जद्दोजहद की आवश्यकता नहीं उनके कविताओं में लोकतंत्र की विसंगति सहज ही दृश्यमान है।

रचनाकार की प्रासंगिकता की तलाश अभी के संगोष्ठी और परास्नातक में पूछे गए सवालों का शगल है। लेकिन कुछ रचनाकारों का अपने चयनित विषय की वजह से प्रासंगिक रहना समाज के आगे न बढ़ पाने का परिचायक होता है। कबीर, प्रेमचंद, नागार्जुन, धूमिल सरीखे रचनाकार समाज के जिन दूषित रूढ़ियों, धारणाओं और स्थितियों पर प्रश्न उठाते हैं अगर वह अभी भी हमारा मार्गदर्शन कर रहीं हैं तो बात साफ है कि इन लोगों के मेहनत को हमारे समाज ने उचित पारिश्रमिक नहीं प्रदान किया।

रघुवीर सहाय जैसे रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि उन चीजों को हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं जो मानवीय धरातल पर अनुचित जान पड़ता है। इसलिए इन अनुचित चीजों का समाज में व्याप्त रह जाना साहित्यकार के प्रति एक उपेक्षा का भाव भी बताता है। और दूसरे इन रचनाकारों कि रचनाओं का साधारण पाठक तक नहीं पहुंच पाने कि ओर संकेत भी है। लेकिन अफसोस जनक बात यह है जो इन कविताओं के पाठक हैं उनके भी बुनियादी सामंती स्वभाव में कोई खास परिवर्तन नहीं लक्षित होता।

इस लेख में रघुवीर सहाय के रचना संसार में से कुछ कविताओं का सहारा लेकर हम रघुवीर सहाय की समय के प्रति जिम्मेदारी का एक खाका खींचते है।

'आजादी' के आंदोलन में यहाँ की जनता ने जिन सपनों के साथ भाग लिया था आजादी मिलने के बाद उन सपनों का गला धीरे धीरे घुटने लगा। आजादी की लड़ाई में गाँधी जी ने कहा- "मैं ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें सबसे दरिद्र व्यक्ति भी महसूस कर सके कि यह उनका देश है और उसके निर्माण में उनकी प्रभावक आवाज़ है। यह ऐसा भारत होगा जिसमें न उच्च वर्ग होगा न निम्न वर्ग। वह ऐसा भारत होगा जिसमें सारे समुदाय मेलजोल के साथ रहेंगे। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के लिए कोई जगह नहीं हो सकती।...

महिलाओं को पुरुषों की तरह ही सम्मान और समान अधिकार होंगे... यही मेरे सपनों का भारत है।"[1] लेकिन यह सपनों का भारत ही रह गया। रघुवीर सहाय के रचनाकाल में जमीं पर की सच्चाई कुछ और ही थी जिसे उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया। 15 अगस्त 1947 ई. में देश आजाद हुआ। आम जनता इस राष्ट्र के बदलने के सपने देखने लगी यह इंतजार 1960 ई. तक आते आते नेहरूबियन सोशलिज्म के मोह से मुक्त होने लगा। आम जन नेताओं के वादे में निहित अर्थ को धीरे धीरे समझने लगा। यह दौर आजादी के सपनों से मोहभंग का दौर है। इसी मोहभंग की जमीन पर रघुवीर सहाय की कविताओं की फसल लहरा रही है और लोकतंत्र की विसंगतियों को चिढ़ा रही है।

वह समय मानवीय मूल्यों, सिद्धांतों, नैतिकताओं के ह्रास का समय था ऐसा इस समय के संबंध में कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है और इस कारण उनकी कविताएँ आज भी प्रासंगिक बनी हुई हैं।

रघुवीर सहाय के काव्य संसार के एल्बम में बहुदा चित्र हैं, लेकिन ज्यादातर चित्र लोकतंत्र की विसंगतियों के हैं। इनके आकार, रूप रंग, साज सज्जा देखने में भिन्न लग सकते हैं लेकिन इनको लोकतंत्र की विसंगतियों के साँचे से ही गढ़ा गया है।

'अधिनायकवाद' कविता उनकी बहुचर्चित कविता है जो लोकतंत्र की जमीं पर खड़े राष्ट्रवाद और विकास के मुहावरों से मुठभेड़ करती है। भारत के राष्ट्रगान में जिस भाग्य विधाता को लोग याद करते हैं, वह कौन है? राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रवाद के गगनभेदी नारों के के नीचे व्यक्ति की लगातार होती उपेक्षा आम आदमी को निरंतर कमजोर करती जाती है। पर इस समाज का हरचरना हर बार उसके गायन पर मूर्तिवत खड़ा होता है। कविता की पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

राष्ट्र गीत में भला कौन वह

भारत भाग्य विधाता है

फटा सुथन्ना पहने जिसका

गुण हरचरना गाता है।

....

पूरब पश्चिम से आते हैं

नंगे बूचे-नरकंकाल

सिंहासन पर बैठा, उनका

[1] चंद्रा, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान: हैदराबाद, संस्करण : 2009, पृष्ठ संख्या- 214

तमगे कौन लगाता है।[2]

लोकतंत्र और आजादी को लेकर जो सपने राजनेताओं ने बुनवाये उसके अनुसार हर व्यक्ति के लिए खाने और पहनने की तो पर्याप्त सुविधा थी ही। लेकिन जमीं पर ऐसा नहीं हुआ अब भी हरचरना(आम आदमी) अपने कंकाल रूपी शरीर को फटे कपड़ो से किसी प्रकार ढाके-छुपाए भाग्य विधाता को गीतों में याद कर रहा है। जो भाग्यविधाता कुछ सुनता नहीं बस सुन भर लेता है।

अभी भी आमजन को स्थिति बहुत बेहतर नहीं है। कहने के स्तर पर, कानून के धरातल पर सभी को विकास करने के समान अवसर प्राप्त हैं पर व्यवहार के स्तर पर यह सिर्फ एक मुहावरे सा है। व्यवस्था कभी कभार कुछ लोगों के पक्ष में कुछ अच्छा कर जाती है और यह 'अच्छा' तमाम आम लोगों के लिए प्रेरणा बनता है। इस अच्छी स्थिति की इच्छा लिए आम जन जी रही है। इसी 'अच्छे ' होने की इच्छा में पीढ़ियाँ खप जाती हैं कितने ही परिवारों की, उनके घर में नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की तरह ही जीने को मजबूर है। रघुवीर सहाय लिखते हैं

दुखी मन में उतर आती है पिता की छवि

अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति

उन्हीं पिता की मैं अनुकृति हूँ।[3]

जब एक मेहनत कश को काम करने से और घुटन की जिंदगी से कुछ पल के लिए निजात मिलती है उसके आँखों के सामने थकी हारी, पसीने से तर, फटी-मैली बनियान और तार तार हुई लूंगी पहने पिता की छवि दिखाई देती है। वह आत्मसात कर पाता है कि पिता ने कितने संघर्षों और वेदनाओं में रहकर उसे पाला और दुखद यह है कि वह अपने पुत्र के लिए उपर्युक्त वर्णित स्थिति में कुछ सुधार नहीं कर पाएगा। निहितार्थ यह है कि लंबे समय से आम व्यक्ति के जीवन में कोई बड़ा परिवर्तन दिखाई नहीं देता। वह कुल मिलाकर अपने पिता कि ही अनुकृति है।

रघुवीर सहाय की कविता मूलतः साधारण जनता की कविता है। हरचरना, रामदास, मुसद्दीलाल, खुशीलाल जैसे आमलोंगो के कवि हैं रघुवीर सहाय। आमजन होना कोई बुरी बात नहीं परंतु जब लोकतंत्र के इस महासागर में आमजन की उपेक्षा और शोषण की पराकाष्ठा होने लगे तब? स्थिति इतनी बदतर है कि हत्या होने पर भी कोई खोज खबर लेने वाला नहीं है। 'कोई एक और मतदाता' कविता में खुशनसीब खुशीराम अन्याय सहते हुए भी दिन रात साँस लेता हुआ मस्त है। इस शोषण के खिलाफ वह सूचना विभाग में एक पत्र लिख देता है। अखबार का संपादक गुर्राता हुआ शोषक व्यवस्था के प्रति दुम हिलाता हुआ

[2] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 46
[3] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 23

अखबार के अंतिम पन्नों में किसी किनारे छोटे से कॉलम में शोषक व्यवस्था के बारे में लिख देता है। पर यह पत्र खुशीराम के मृत्यु का कारण बनता है। उसकी हत्या हो जाती है।

एक दिन आखिरकार दुपहर में छुरे से मारा गया खुशीराम

वह अशुभ दिन था, कोई राजनीति का मसला

देश में उस वक्त पेश नहीं था। खुशीराम बन नहीं

सका कत्ल का मसला, बदचलनी का बना, उसने

जैसा किया वैसा भरा।[4]

आमजन की कीमत मतदान के दिन के बाद से कोई खास अहमियत नहीं रखती लोकतंत्र में। अगर आमजन सभी तरह की समस्याओं को अगर सहता जाए तो कोई समस्या नहीं और अगर प्रश्न उठा दे तो उसकी खैर नहीं।

'रामदास' कविता में हत्या का जो चित्र खींचा गया है वह इतना सामान्य सा लगता है कि अपनी सपाट स्थिति में कविता कम अखबार की सूचना परक भाषा में अजीब सी मनःस्थिति को निर्मित करता है। लफंगों और हत्यारों के जेहन में कानून के खौफ के दूर होने की जमीं से ऐसी स्थिति जन्म लेती है, जो कविता में वर्णित है। हमारे लिए विश्वबंधुत्व, मानवीयता, करुणा आदि भाषणों की चीज़ है यह एक मुहावरा है जो ज्यादा ताली बटोर सकता है लेकिन व्यवहार के स्तर पर हम 'रामदास' की हत्या होने की सूचना के बाद भी निष्क्रिय बैठे रहेंगे। आजादी मिलने पर लोकतंत्र ने जो ख्वाब दिखाया उसमें हमारे सुरक्षा की पूरी गारंटी थी लेकिन वास्तव में यहाँ की आम जनता अरक्षित जनता ही बनी रही। विकास के महारथ को चलाने के लिए सरकारों ने जो सड़क बनाई उसमें कितने ही मुसद्दियों के जीवन की बलि पड़ी। इन रामदासों का कोई अस्तित्वगत अर्थ नहीं है। इनको शहरों में लोग नाम से नहीं पेशे से जानते हैं वह भी एक तथ्य के रूप में। रघुवीर सहाय ने लिखा -"लोग सिर्फ लोग हैं, तमाम लोग। लोग ही लोग हैं चारों तरफ लोग लोग लोग। मुँह बाये हुए लोग और रिरियाते हुए लोग। खुजलाते हुए लोग और सहलाते हुए लोग।"[5] वास्तव में महानगरों में इनकी संख्या लाखों में होगी जो सड़क किनारे, फ्लाईओवरों के नीचे और पार्कों के अलावा भी बहुत से स्थानों पर खुले आसमान के नीचे सोने को विवश हैं। इनके मौत का तो कोई भी आँकड़ा सूचना से अधिक और कुछ नहीं सामान्य जन और सरकारों के लिए। इनका मरना जैसे एक स्वाभाविक घटना बन गई हो, क्योंकि ठंड, लू, बाढ़ आदि चीजों के प्रभाव में मरना प्रकृति के कोप की श्रेणी में रख हम निश्चिंत होते हैं। लेकिन कवि दृष्टि चीज़ों को सरलीकृत नहीं करती वह किसी घटना के तह में जाती है–

[4] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 55

[5]सहाय, रघुवीर, सीढ़ियों पर धूप में, वाणी प्रकाशन: नई दिल्ली, संस्करण: 2008, पृष्ठ संख्या- 27

फिर जाड़ा आया फिर गर्मी आई

फिर आदमियों के पाले से लू से मरने की खबर आई:

न जाड़ा ज्यादा था न लू ज्यादा

तब कैसे मरे आदमी

वे खड़े रहते हैं तब नहीं दिखते,

मर जाते हैं तब लोग जाड़े और लू की मौत बताते हैं।[6]

कवि समझता है कि मृत्यु का कारण जाड़ा और लू नहीं अपितु व्यवस्था की लापरवाही है। सरकारें इनके लिए समय रहते कुछ नहीं करतीं और इनके मर जाने पर राजनीतिक में एक मुद्दे के रूप में इसका इस्तेमाल करती है। अखबार में निहित खबरें तथ्य नहीं किसी के जीवन का सत्य है। अखबार के खबरों में जीवन के साथ ज्यादतियों की सच्चाईयाँ हैं जिसे रघुवीर सहाय कविता में हमारे सामने लाते हैं। सुरेश शर्मा लिखते हैं– "क्या विडंबना है कि अभावग्रस्त लोगों की मृत्यु तो खबर बन जाती है, लेकिन लगातार मृत्यु की ओर बढ़ती उनकी जीवन स्थितियाँ खबर नहीं बन पाती।"[7] सबको समान अवसर मिलेगा के वायदे से शुरू हुआ लोकतंत्र प्रभुत्वशाली लोगों को और अधिक मजबूत बनाता है। अमीर और अमीर बनता जाता है और गरीब और गरीब। हमने ठंड और लू से मरते व्यक्ति की तस्वीर तो देख ही ली अब इस लोकतंत्र में समृद्धि के शिखर पुरुषों का पूरा दृश्य देखिए–

इतने बड़े कमरे थे जिसमें सौ सौ लोग समायें

घर के भीतर बैठे गृहमंत्री जी दूध मिठाई खायें

बाहर बैठे हुए सबेरे से मिलने वाले जमुहायें।[8]

यह हमारे जनसेवक की तस्वीर है। बात स्पष्ट है। समस्या आर्थिक नहीं काम करने के मनसा की है। संसाधन का रोना सरकारों की चालबाजी से अधिक और कुछ नहीं।

लोकतंत्र में जनता एक वोट से अधिक कुछ और नहींव्यवस्था उसके बाद वह मूक दर्शक बनकर पूरे शासन , –को सिर्फ देख सकती है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन विचारणीय है"जनता को शासन पद्धति का

[6] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 148
[7] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 6
[8] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 159

भागीदार न बनाकर उसे मूक दर्शक बनाकार छोड़ दिया गया है। समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित होकर भारतीय मनुष्य केवल मतदाता बन गया है।"[9]

भारत में मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना गया है। कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका की तस्वीर तो जाहिर ही है। उस समय की संसद चोरों का जमावड़ा थी पर उसपर कोई अंगुली नहीं उठा सकता था।

राष्ट्र की

संसद एक मंदिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं

जा सकता ।[10]

रघुवीर का साहस काबिले तारीफ है। सांसद द्रोही, चोर, भ्रष्टाचारी सब थे पर ऐसा कहना वर्जित था। पर उन्होंने कह दिया। यह साहस का काम है। समय कोई भी हो पर ऐसा कहना खतरे से खाली नहीं।

जनता का लागातार होता शोषण सत्ता और मीडिया के आपसी गठजोड़ का नतीजा है। उन्होंने आपस में एक ऐसा संबंध निर्मित किया है जो आपको वितृष्णा की मनःस्थिति में ले जा सकता है। उन्होंने आपस में एक नए प्रकार की हँसी इजात कर रखी है जिसके सहारे वे जनता को मूर्ख बनाते हैं-

बीस अखबार के प्रतिनिधि पूछे पचीस बार

क्या हुआ समाजवाद

कहे महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार

आँख मारकर पचीस बार वह, हँसे वह पचीस बार

हँसे बीस अखबार।[11]

इनकी पच्चीस बार की हँसी आपसी सांठ गांठ की सूचक है। यह जनता को मूर्ख बनाने कर उनके शोषण के लिए आँखों ही आँखों में किया गया अलिखित समझौता है जिसके हवाले से महासंघ का मोटा अध्यक्ष मुसद्दीलाल की दबाकर रखने की बात करता है–

जब मिलो तिवारी से - हँसो - क्योंकी तुम भी तिवारी हो

जब भी मिलो शर्मा से हँसो क्योंकि वह भी तिवारी है

[9] तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, समकालीन हिंदी कविता, लोकभारती प्रकाशन: इलाहाबाद, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या-166

[10] सहाय, रघुवीर, आत्महत्या के विरुद्ध, रजकमल प्रकाशन : दिल्ली, संस्करण:2014 पृष्ठ संख्या 35

[11] सहाय, रघुवीर, आत्महत्या के विरुद्ध, रजकमल प्रकाशन : दिल्ली, संस्करण:2014 पृष्ठ संख्या 12

जब मिलो मुसद्दी से

खिसियाओ, जाँत पाँत से परे

रिश्ता अटूट है

राष्ट्रीय झेंप का।[12]

तिवारी यहाँ जाति नहीं अपितु शोषक वर्ग का प्रतिनिधि शब्द है। तिवारी आपस में सांठ-गांठ के दमपर ही जनता का का शोषण करते हैं इनकी आपसी सहभागिता आपस में अटूट विश्वास पर टिकी हुई है। शोषण के लिए ये सभी तिवारी जिम्मेवार हैं। इस शोषक समुदाय के प्रति रघुवीर सहाय आक्रोश से भरे हुए हैं। वे 'नेता क्षमा करें' कविता में लिखते हैं–

लोग लोग लोग चारों तरफ हैं मार तमाम लोग

खुश और असहाय

उनके बीच में सहता हूं

उनका दुःख

अपने आप और बेकार[13]

रघुवीर लोकतंत्र के दुश्मनों को बखूबी पहचानते हैं। और उनको हमारे समक्ष उसी रूप में रख देते हैं जैसे वे हैं।

लोकतन्त्र के दर्पण में स्त्रियों ने जो ख्वाब सजा रखे थे उसकी उपेक्षा लोकतंत्र की विसंगति का सबसे बड़ा प्रमाण है। स्त्री मजदूर भी हैजिसकी पीड़ा तो औ ,र भी असहनीय है। वायदे और विकास की शाब्दिक आँधी में बुनियादी परिवर्तनों कि ओर सत्ता का कोई ध्यान नहीं है। एक स्त्री को कहने के स्तर पर समान शिक्षा और विकास के अवसर उपलब्ध हैं परंतु व्यवहार के धरातल पर पूरी व्यवस्था पितृसत्ता की मानसिक संरचना से निर्मित है। स्त्री पढ़ने लिखने के बाद भी अंत में समाज में कुशलगृहणी की भूमिका में ही ज्यादा सम्मान पाती है-

पढ़िए गीता

बनिए सीता

फिर इन सब में लगा पलीता

किसी मूर्ख की हो परिणीता

[12] सहाय, रघुवीर, आत्महत्या के विरुद्ध, रजकमल प्रकाशन : दिल्ली, संस्करण:2014 पृष्ठ संख्या 13

[13] सहाय, रघुवीर, आत्महत्या के विरुद्ध, रजकमल प्रकाशन : दिल्ली, संस्करण:2014 पृष्ठ संख्या 9

निज घर बार बसाइए।[14]

लोकतन्त्र के मुआवरे में स्त्री पुरुष समानता का मुहावरा अपने बुनियाद में ही प्रश्नांकित स्थिति में है। स्त्री शोषण के बीज को पुरुष निर्मित व्यवस्था में स्वाभाविक रुप से रेखांकित किया जा सकता है। रघुवीर सहाय 'दयावती का कुनबा' कविता में स्त्री के शोषण और बुरी स्थिति के लिए जिम्मेवार कारणों की पड़ताल करते हैं

एक साल पति की सुश्रुषा करते हुए

कई बरस कम पढ़ी औरत के

सीने पिरोने की मेहनत मजूरी के

लड़की को रोजी कमाने के लायक बनाने के –

इसमें दामाद खोजने को भी जोड़ लें

तो अंतिम सांस घिसटती दयावती

दोनों विधवाओं को छोड़ गुजर जाती है।[15]

दयावती का इस तरह संघर्ष करते हुए चले जाना उन तमाम महिलाओं का प्रतीक बन जाता है जो इस तरह की स्थिति में जीने के लिए अभिशप्त हैं। और बहुत सी कविताओं के माध्यम से रघुवीर स्त्री के शोषण की तस्वीर हमारे समक्ष रखते नजर आते हैं। जो लोकतंत्र पर अपने ढंग से प्रश्न खड़े करता है।

इन कविताओं को पढ़ने के क्रम में हमें समय को विशेष रुप से लक्षित करने की आवश्यकता है। ये सभी कविताएँ एक खास समय में लिखी गई है। अभी लोकतंत्र पहले के बनिस्पत अधिक मजबूत हुए है। सूचना क्रांति के बाद चीजों में बहुत गति में बदलाव हुआ है। इंटरनेट ने चीज़ों को एकरेखीय नहीं छोड़ा। नए लोगों के लिए हर पल घटती घटना से मिनट मिनट में परिचित होना जनतंत्र के लिए मजबूत स्थिति बनाता है और साथ ही सूचनाओं को तोड़ मरोड़कर कर जनता के समक्ष उपस्थित करना आमजन के लिए चुनौती भी बना है।

अगर बहुत निराशा से भरी दृष्टि नहीं हो तो रघुवीर सहाय जिस समय की तस्वीर हमारे सामने रखते हैं, अभी का समय उस समय से बेहतर है। यह समय आम जनता के पक्ष में खड़ा है बस सवाल इतना सा है इस समय में प्राप्त चीजों का हम इस्तेमाल किस ढंग से करते हैं।

****

[14] शर्मा, सुरेश(स.), प्रतिनिधि कविताएँ: रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन: दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या- 28

[15] शर्मा, सुरेश(स.), रघुवीर सहाय रचनावली, लोकभारती प्रकाशन: इलाहाबाद, संस्करण : 2000, पृष्ठ संख्या- 108